प्रकाशक
बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना ३

प्रथम संस्करण वि० सं० २०१४; मार्च १९५७

मूल्य—दस रुपये : सजिल्द—ग्यारह रुपये,पर्च

वक्तव्य

भारतवर्ष केवल कृषि-प्रधान ही नहीं, तीर्थ-प्रधान देश भी है। यहाँ असंख्य तीर्थ-स्थान है। अनेक पर्वत, नदी, जलकुण्ड, तपोवन, सिद्धाश्रम, पुण्यक्षेत्र, ज्ञानपीठ, मुक्तिधाम आदि तीर्थस्थल इस महादेश के विभिन्न भागों मे स्थित है। उन तीर्थ-स्थलो मे प्रायः समय-समय पर समस्त देश के रमता योगी साधु-सन्तों का समागम और समारोह होता रहा है तथा अब भी होता रहता है। ऐसे अवसरों पर महात्माओं के सत्संग से श्रद्धालु जनसमाज का तो उपकार होता ही है, साहित्य को भी बहुत लाभ होता है। शताब्दियों से यह काम होता आ रहा है और भविष्य मे भी होता रहेगा।

आज भी यह देखने मे आता है कि पुण्यकाल मे सरित्-संगमों और पुण्य तीर्थों मे जो धार्मिक मेले होते है, उनमे प्रत्येक दिशा से संत-महात्मा एकत्रित होकर ज्ञान और भक्ति की चर्चा करते हैं। इस प्रकार संतों के पारस्परिक मिलन, परिचय और विचार-विनिमय से अबतक आध्यात्मिक साहित्य की काफी श्रीवृद्धि हुई है। हमारे तीर्थों और संतो ने जैसे लोकमानस की चेतना को उद्बुद्ध करने मे योग-दान किया है, वैसे ही भारतीय भाषाओं में परस्पर आदान-प्रदान का क्रम भी जारी रखने मे सहयोग दिया है। हिन्दी के संत-साहित्य के कई ग्रंथों के विषय मे आज भी सुना जाता है कि अमुक तीर्थ मे समवेत हुए संत महात्माओं के सत्संग से उनके प्रणयन की प्रेरणा मिली। प्रस्तुत ग्रंथ के कुछ स्थलों का अवलोकन करने से इस धारणा की स्पष्ट पुष्टि होती है। साथ ही, भाषा-विज्ञान की दृष्टि से तुलनात्मक अध्ययन की सामग्री भी इसमे मिलती है।

संसार को संतों की देन का लेखा-जोखा करना असम्भव है। संत शिरोमणि महा-कवि तुलसीदास ने अपनी 'विनय-पत्रिका' के एक पद में लिखा है कि 'सत मे और भगवान् मे कभी कोई अन्तर[1] नहीं होता'। श्रीमद्भगवद्गीता के नवम अध्याय[2] में भी स्वयं भगवान् ने कहा है कि 'मैं सभी प्राणियों मे समान भाव से व्यापक हूँ, न कोई मेरा अप्रिय है और न प्रिय; परन्तु जो मुझे भक्ति-सहित भजते है, वे मुझमे बसते है और मैं उनमे बसता हूँ।' इस प्रकार संत साक्षात् भगवान् ही होते हैं। अतः उनकी देन अनन्त अपार है।

भगवान्-स्वरूप संत सभी देशों और सभी जातियों मे पाये जाते हैं। ऐसे संतों की देन से संसार की अनेक भाषाओं के साहित्य का महान् उपकार हुआ है। संतों की

---

१. 'सन्त भगवन्त अन्तर निरन्तर नहीं'—(तुलसी)

२ समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥२९॥

अमर वाणियों से जो लोक-कल्याण हुआ है, वह वर्णनातीत है। जगत् के जीवों के मंगल के लिए सन्त सदा जंगम तीर्थ के समान धराधाम पर विचरण करते रहते हैं। संतों के जीवन-वृत्तान्त मे देशाटन और सत्संग के अनेक प्रसंग मिलते हैं। गुरु नानक को हम भारत की सीमा के बाहर भी रमते हुए पाते हैं। सारी दुनिया ही संत और फकीर की जागीर है। महाराष्ट्र के संत हिन्दी-प्रधान क्षेत्रों मे पर्यटन करते थे और हिन्दी-क्षेत्र के संत भी दक्षिण भारत की ओर जाते थे। हमारे 'चारो धाम' भी संतों के समागम में सहायक होते थे और आज भी होते हैं। ऐसी स्थिति में यह अनुमान असंगत न होगा कि दक्षिण के संत भी उत्तर के संतों से प्रभावित हुए होंगे। प्रकारान्तर से यह अनुमान इस ग्रंथ द्वारा सत्य प्रतीत होगा।

यहाँ एक बात और भी ध्यान में रखने योग्य है। वह यह है कि देश-भर की राष्ट्र-भाषा हिन्दी की व्यापकता देखकर हिन्दीतर भाषाओं के विद्वान् और महात्मा भी उसके माध्यम से अपने सिद्धान्त और सन्देश का अधिकाधिक प्रचार करना चाहते थे। आखिर उनकी रचना का उद्देश्य भी यही होता था कि वह यदि गेय पद अथवा श्रव्य-काव्य के रूप मे हो तो अधिक-से-अधिक लोगों के कण्ठ मे बसे—अधिक-से-अधिक लोगों के कर्ण-पुट को पवित्र करे। इसलिए भी संतों ने अपनी वाणी का अमृत हिन्दी को पिलाया कि वह उस दिव्य प्रसाद का वितरण आसेतुहिमाचल कर देगी। भारतीय भाषाओं मे विशेषतः हिन्दी को ही यह सौभाग्य प्राप्त है कि उसके साहित्य को अन्य-भाषा-भाषियों की देन सदैव समृद्ध करती आई है। हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे अन्य-भापा-भाषी साहित्यकारों की सेवाएँ आज भी सादर स्मरणीय हैं। इससे उसके राष्ट्रभाषा-पद का औचित्य ही सिद्ध होता है। पाठक देखेंगे कि ये बातें बहुलांश मे इस ग्रंथ से भी प्रमाणित होती हैं।

इस ग्रंथ में परिषद् के पाँचवें वर्ष की दूसरी भाषणमाला प्रकाशित है। इस भाषणमाला का आयोजन 'बिहार-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन' के सभा-भवन मे सन् १९५५ ई० के २२-२३ मार्च को हुआ था। हमारी समझ मे इस ग्रंथ से यह लाभ होने की सम्भावना है कि इसी तरह के अन्य विषयों मे खोज करने की प्रवृत्ति बढ़ेगी और क्रमशः यह तथ्य प्रकट होता चलेगा कि हिन्दी को कहाँ, कब, किससे, कौन-सी देन नसीब हुई। ऐसा होने से हिन्दी के साहित्य-भाण्डार का वैभव ही बढ़ेगा।

ग्रंथकार आचार्य विनयमोहन शर्मा हिन्दी-संसार के एक लब्धकीर्त्ति साहित्य-सेवी एवं समीक्षक हैं। पहले आपका असली नाम श्री शुकदेव प्रसाद तिवारी था। आप मध्यप्रदेश के निवासी हैं। आपका शुभ जन्म सन् १९०५ ई० मे हुआ था। काशी के हिन्दू-विश्व-विद्यालय मे आपने शिक्षा पाई थी—एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, पी-एच्० डी०। सन् १९२८ से १९३० ई० तक खण्डवा (मध्यप्रदेश) के प्रसिद्ध हिन्दी-साप्ताहिक 'कर्मवीर' के सहायक सम्पादक थे। उसके बाद सन् १९४० ई० तक खण्डवा मे ही वकालत

करते हुए साप्ताहिक 'स्वराज्य' के साहित्य-विभाग के सम्पादक भी रहे। सन् १६४० से १६४६ ई० तक नागपुर के सिटी कॉलेज मे हिन्दी के प्राध्यापक। सन् १६४६ से १६५६ ई० तक नागपुर-विश्वविद्यालय मे हिन्दी-विभागाध्यक्ष। नये मध्यप्रदेश के निर्माण के पश्चात्, नवम्बर १६५६ से, शासकीय महाकोसल-महाविद्यालय (जबलपुर) में हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष। प्रमुख साहित्यिक रचनाएँ—साहित्य-कला, कवि 'प्रसाद'—'आँसू' तथा अन्य कृतियाँ, दृष्टिकोण, साहित्यावलोकन, भूले गीत, गीतगोविन्द (खड़ी बोली-गीति-शैली में रूपान्तर)।

ग्रंथकर्त्ता ने इस गवेषणापूर्ण ग्रंथ के निर्माण में अनेक वर्षों तक अनवरत परिश्रम किया है और आज भी आप इस विषय के अनुसंधान-अनुशीलन मे संलग्न हैं। वास्तव में यह ग्रंथ भी हिन्दी-संसार को आपकी एक अमूल्य देन है। आशा है कि परिषद् की भाषणमालाओं के अन्य ग्रंथों की भाँति हिन्दी-संसार मे यह ग्रंथ भी समादृत होगा।

चैत्र-पूर्णिमा, विक्रमाब्द २०१४
शकाब्द १८७६; सन् १६५७ ई०

शिवपूजन सहाय
(संचालक)

विषय-सूची

भूमिका

मराठी सन्तों की हिन्दी के प्रति सहज ममता रही है। मध्य-युग से लेकर आजतक लगातार मराठी सन्त कीर्त्तन-भजन के अवसर पर मराठी अभंगों और पदों के साथ एक-दो हिन्दी-पद गाते आ रहे हैं। जो मराठी सन्त कवि-प्रतिभा-सम्पन्न रहे हैं, उन्होंने मराठी के साथ हिन्दी-पदों की स्वयं रचना की है और जो केवल कीर्त्तनकार रहे हैं, उनकी मराठी अभंगों आदि के साथ किसी प्रसिद्ध हिन्दी सन्त के पद गाने की परिपाटी रही है। सन्तों ने प्रान्त या भाषा-भेद को कभी स्वीकार नहीं किया। महाराष्ट्र के सन्त महिपति बोआ ने ईसा की १८ वीं शताब्दी में 'भक्त-विजय' नामक सन्त-चरित्र-ग्रन्थ लिखा है जिसमें मराठी के ही नहीं, हिन्दी के सन्तो का भी उल्लास-पूर्ण गुणगान है। लोक-कल्याण की व्यापक भावना से अभिभूत इन सन्तों की हिन्दी-वाणी का अध्ययन करने का अवसर लेखक को नागपुर आने पर प्राप्त हुआ। सन् १९४६ ई० में, नागपुर मे जब अखिल भारतीय प्राच्यविद्या-परिषद् का वार्षिक अधिवेशन हुआ, तब उसने नामदेव की हिन्दी-कविता पर एक शोध-निबन्ध पढ़ा जो 'अखिल भारतीय प्राच्य-विद्या-परिषद्' के विवरण-ग्रन्थ तथा शान्ति-निकेतन की त्रैमासिक पत्रिका 'विश्व-भारती' मे प्रकाशित हुआ। उस समय उसके सम्पादक आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी थे। उन्होने तथा प्राच्य-विद्या-परिषद् के स्थानीय मन्त्री डा० हीरालाल जैन ने इस दिशा मे कार्य करने की प्रेरणा दी। तभी से वह मराठी सन्तों और उनकी हिन्दी-रचना पर सामग्री संचित कर उसपर मनन-चिंतन करता आया है। लेखक को अपनी सामग्री जुटाने के लिए साम्प्रदायिक क्षेत्रों, साहित्य-संस्थाओं और शोध-कार्यप्रेमियो का आश्रय लेना पड़ा। धूलिया के श्री समर्थ वाग्देवता-मंदिर मे सबसे अधिक सन्त-वाङ्मय की निधि रक्षित है। वहाँ लगभग दो सहस्र हस्तलिखित पोथियों के विवरण तैयार हो चुके है और शेष के हो रहे हैं। इसी प्रकार मराठवाड़ा-क्षेत्र की सामग्री मराठवाड़ा-साहित्य-परिषद् हैदराबाद के ग्रंथागार मे सुरक्षित है। परन्तु वहाँ सामग्री का पूर्ण रूप से वर्गीकरण नहीं हो पाया है। अनेक प्रमुख सन्तों की वाणियाँ 'गाथाओं' के रूप में प्रकाशित हो चुकी है। परन्तु, अनेक 'गाथाओं' मे केवल मराठी के अभंग, पद आदि संकलित है। ऐसी दशा मे लेखक को अप्रकाशित सामग्री का अधिक सहारा लेना पड़ा है। ग्वालियर मे श्री भा० रा० मालेराव के निजी ग्रंथागार मे भी सामग्री है, पर

मुझे वहाँ जाने का अवसर नहीं मिल पाया। भालेरावजी ने दो-तीन सन्तों पर टिप्पणियाँ भेजने की कृपा की थी, पर बिलम्ब से प्राप्त होने के कारण उनका उपयोग नहीं हो पाया। 'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका' (भाग १०, सं० १९८६, पृष्ठ ८७—११०) मे उन्होंने 'हिन्दी-साहित्य के इतिहास के अप्रकाशित परिच्छेद' शीर्षक निबन्ध मे मराठी के कतिपय हिन्दी-पद-गायक सन्तो का संक्षिप्त परिचय प्रकाशित करा कर इस दिशा मे शोध का मार्ग निर्दिष्ट किया है। इसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं। हिन्दी-साहित्य के कतिपय इतिहासो मे मराठी-सन्तों मे नामदेव का उल्लेख मिलता है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने 'हिन्दी-साहित्य' मे नामदेव के अतिरिक्त अन्य मराठी हिन्दी-पदकर्त्ता सन्तों का श्री भालेराव जी के उक्त लेख के आधार पर उल्लेख किया है। उनके अतिरिक्त भी बहुत से ऐसे मराठी सन्त हैं, जिन्होंने हिन्दी मे पद-रचना की है। परन्तु, उनका क्रमबद्ध परिचय प्राप्त नहीं था। लेखक इस कमी का अनुभव कर रहा था। गत तीन-चार वर्ष पूर्व बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् (पटना) मे भाषण प्रस्तुत करने के लिए श्री रामवृक्ष जी शर्मा 'बेनीपुरी' और बाबू शिवपूजन सहाय जी ने बार-बार प्रेरित कर उससे यह कार्य सम्पन्न करा लिया। लेखक इन सम्माननीय बन्धुओं का आभारी है!

परिषद् में भाषण हो जाने के पश्चात् भी लेखक का इस दिशा मे अनुसंधान-कार्य जारी रहा। परिणाम-स्वरूप उसे अनेक नये संत-कवियों का पता लगा, जिनका संक्षिप्त परिचय देने का लोभ संवरण नहीं हो रहा है। अतः भूमिका मे ही उनका समावेश किया जा रहा है।

जयराम स्वामी

समर्थ रामदास के संत-मण्डल मे जो अनेक संत हो गये है, उनमे जयराम स्वामी का भी स्थान है। इनकी जन्मतिथि गोकुल अष्टमी शक-संवत् १५२१ और समाधि-तिथि भाद्रपद वदी ११, शक-संवत् १५९४ है। ये अत्यन्त गरीब होने से मधुकरी माँग कर अपना जीवन-यापन करते थे। स्वामीजी के चरित्र का एक 'वृत्त' प्राप्त हुआ है, जिसमे लिखा है कि इनके पास एक लँगोटी, शरीर पर एक 'बंडी', नीचे बैठने को एक श्वेत कम्बल और पानी पीने को एक तुम्बा था। (देखिए—भावे—तुलपुले—'महाराष्ट्र' सारस्वत पृष्ठ २७) वड़गाँव मे कृष्णप्पा स्वामी से इन्होंने दीक्षा ली और वहीं रहकर ग्रन्थ-रचना की।

इनके ग्रन्थों मे 'दशम स्कंध टीका, रुक्मिणी-स्वयंवर, सीता-स्वयंवर, अपरोक्षानुभव अधिक प्रसिद्ध है। ये सब मराठी मे हैं। हिन्दी मे इनके स्फुट भजन मिलते हैं। भगवान की 'बराई' (बड़ाई) करते-करते स्वामीजी थक जाते हैं। कहते हैं—

ज्याके भेद पायबे कु वेद गुंग हो रहे
ऐसे कोई हय गुणी वाके नीव नीव है।
च्यार मुख पंचमुख, सेषमुख असेषमुख।
वाके गुणन की माला वरने सो कोन है।

नारदादि सिद्ध साध व्यास वाल्मीक शुक
च्युक च्युक के गय सो मोह के नदी वहे।
ज्याहि आदि, मध्य नहीं अंत कहत जयराम पंत
कहा लों वराई करों मोहे येक जीभ है।

जयरामस्वामी का उपर्युक्त कवित्त कवित्वमय है। उसमे 'मराठी' हिन्दी का ब्रजरूप है।

शिवराम

ये भी रामदासी थे और इनका मठ तेलंगाना मे था। ये मौजी साधु थे। निजामशाही की कल्याणी मे इनका मठ था। इनका जन्म-शक-संवत, १६२५ कहा जाता है। इनकी गुरु-परम्परा इस प्रकार है—
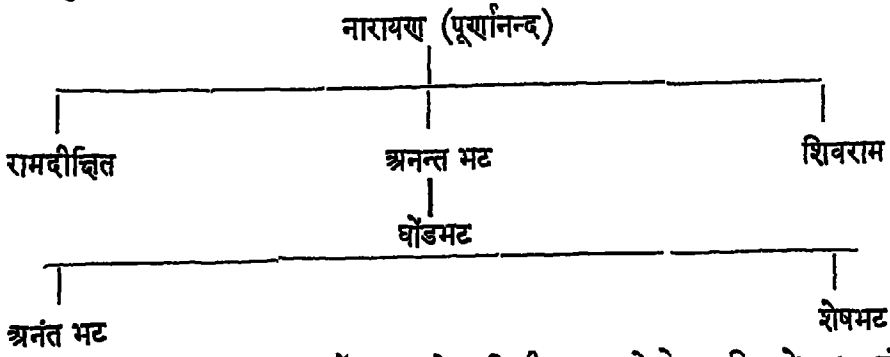
ये पूर्णानंद के शिष्य हैं। इनके हिन्दी-पद, दोहरे आदि लेखक को मराठवाड़ा-साहित्य-परिषद् (हैदराबाद) के हस्तलिखित ग्रंथागार से उपलब्ध हुए हैं। निजामशाही में रहने से इनकी भाषा में प्रवाह है। भावों मे मस्ती है।

इनके नाम पर प्रचलित दोहरे आदि नीचे दिये जाते हैं, जो स्थानीय लोक-प्रचलित खड़ीबोली में हैं और नीतिपरक हैं।

साधू हमारे आत्मा, हम साधू के जीव।
साधू दुनिया यों बसे कि ज्यों गोरस मे घीव ॥

× ×

रामेभक्ति वड़ी कठीण हय खांडे जैसी धार।
डगमगावे तो गिर पड़े न तो उतरे पार ॥

× ×

सवमन ऐसी प्रीत कर ज्यों चुना हर्दि का हेत।
हर्दि ने जर्दी त्यजी, चूना रहे न श्वेत ॥
साह का घर उच्च्य हय, जैसी वड़ी खजूर।
चढे तो चाखे प्रेमरस, गिरे तो चकना चूर ॥
तेड़ी पगड़ी बांद कर उपर लगावे फूल!
तलव आइ जव साईं की, गई चोकड़ी भूल ॥

× × × ×

और छठे वेदान्त, अंकुशपुराण, रामायण, सुन्दरकाण्ड आदि के निर्माता हैं। अतः इन्हीं छठे मुकुन्द के कृतित्व पर विचार किया जाता है। इनके सम्बन्ध मे भारत-इतिहास-संशोधन-मण्डल (पूना) के शके १८३४ के वृत्त मे थोडी चर्चा की गई है। इनका जन्मस्थान खण्डवा है। इसे इन्होने अपने आत्मचरित में लिखा है—'नीमाडदेशांत खांडोनवाशी असे जन्म माझा तया पौरदेशी'—पिता का नाम नारायण है। सात वर्ष की आयु में ही इनका विवाह हो गया था। उसके बाद ही पिता का देहान्त हो गया। दारिद्र्य से उत्पीड़ित हो ये खानदेश में 'जैतापुर' जाकर पितामह के पास रहने लगे। इन्होंने शके १६२३ मे स्वप्न में गुरुमन्त्र ग्रहण किया। कुछ समय तक इन्होंने औरंगजेब के ज्येष्ठ पुत्र मोअज्जिम के यहाँ नौकरी की तथा देश का विस्तृत भ्रमण किया और तीर्थस्थलों की यात्राएँ कीं। इससे इन्हें व्रज निमाड़ी, आभारी, बागलाणी, खानदेशी, गुर्जरी, धारवाड़ी आदि भाषाओं का अच्छा ज्ञान हो गया था। इनकी समाधि-तिथि अज्ञात है।

इन्होंने मराठी में रामायण सुन्दरकाण्ड, रेणुका-सत्य-दर्शन, दानलीला, गुरु-स्तुति, अंगद-शिष्टाई, सुदामा-चरित्र, छन्दोरत्नाकर आदि ग्रंथों की रचना की और हिन्दी में फुटकल कवित्त, पद आदि लिखे। लेखक को इनका एक कवित्त मिला है जिसमें काव्य-छटा है और भाषा की दृष्टि से भी अधिक स्वच्छता है। उसे पढ़ने पर ज्ञात हो जाता है कि इनका व्रजभाषा से अवश्य परिचय रहा है। इतना ही नहीं, हिन्दी-काव्य परम्परा से भी ये अवगत रहे हैं। कवित्त इस प्रकार है—

ज्याहे जलकमल रे कोकिल बसंत हिंत
ज्याहे मोर मेघ रे चकोर इक चंद को।
ज्याहे चक्रवाक परकाश परभात भई
ज्याहे मेह सरवर सिंपी स्वाति बुंद को।
नादन कु स्वाद ज्याहे कुरंगी कुलह मोहे
भुजंग ज्याहे ज्यंदन (औ) भृंगी मकरंद को
ज्याहत चरनारविंद विलोकि मुकुन्दानन्द
वसुदेव सुत्तानंद नंदन क नंद को॥

राम

इनका शोध स्वर्गीय राजवाड़े ने लगाया था। ये शक-संवत् १५६७ मे जीवित थे। पैठण के किसी नारायणस्वामी के शिष्य थे। इनके पिता का नाम नृसिंह और पितामह का गोपीनाथ था। इनका मराठी मे साढ़े तीन हजार ओवियों का ग्रंथ है जो काव्य की दृष्टि से उत्तम कहा जाता है। लेखक को इनका हिन्दी मे निम्नांकित पद उपलब्ध हुआ है—

ताल लिये वरुण कुबेर करताल लिये
झांज लिये पवन मृदंग अमरेस है।
बीन लिये नारद पितामह सारंगी लिये
मरुत सीतार मुहचंग लिये सेस है।

गावे गुरु सनक सनंदन ज्यम (थम) अनल
गणेश उच्चार करे चन्द्रमा दिनेस है।
राम कहे गोकुल मे नंदन मुकुन्द भये
..............सभा मधे नाचत महेस है।

नरहरि-रामदासी

महाराष्ट्रीय सन्तों मे नरहरि, नरहरि सोनार, नरहरि माली, नरहरि मोरेश्वर, नरहरि और नरहरि-रामदासी नामक छह सत हो चुके हैं। दो नरहरि तो ऐसे है कि जिनके आगे जाति, ग्राम, गुरु किसी का पृथक् नाम भी जुडा हुआ नहीं है। ऐसी दशा मे हिंदी-पदकार कौन नरहरि है, इसका निर्णय करना कठिन है। इनका अप्रकाशित हिन्दी-पद रामदासी मठ से प्राप्त हुआ है। इसलिए, इन्हे रामदासी ही मानना अधिक उचित जान पडता है। इनकी गुरु-परम्परा इस प्रकार है—

भीमस्वामी-नरहरि—समर्थ रामदास। इनका समय सन् १६५० से १७०० माना जाता है। इनके मराठी-ग्रंथ 'आर्य टीका', 'रामजन्म', 'महाभारत', 'शतमुख रावणवध', और 'अभंग' आदि हैं। इनकी जो हिन्दी-रचना लेखक को उपलब्ध हुई है, वह इस प्रकार है—

नंद के नंदन कौस (कंस) निकंदन
त्रिभुवन वंदन आवतु है।
वेद पुराण बखानत भारत
व्यास गुणी ज्यन गावतु है।
इन्द्र फणीन्द्र दिवाकर चन्द्र
चतुर्मुख रुद्र मनावतु है।
सूरत देखत मन को बूझत
नरहरि के मन भावतु है।

इसमें यत्र-तत्र शब्द-योजना को आनुप्रासिक बनाकर नाद-माधुर्य बढ़ाने का यत्न दिखाई देता है। पद मे प्रवाह है।

मानपुरी

इनकी देवगिरि (दौलताबाद) मे समाधि है। समाधि-तिथि ज्येष्ठ शुक्ल ५ रविवार, शक-संवत, १६५२ है। इनके जीवन-व्यापार के सम्बन्ध मे विशेष ज्ञात नहीं है। इनके फुटकल पद उपलब्ध है। इनका मराठी के अतिरिक्त हिन्दी पर भी अधिकार जान पड़ता है। इनके हिन्दी में कई अप्रकाशित पद लेखक को प्राप्त हुए हैं जिससे ज्ञात होता है कि इन्होंने उत्तर भारत की यात्रा ही नहीं की, वहाँ कही काफी समय तक ये रहे भी है।

'गंगा' पर इनका पद है—

तेरो हि निर्मल नीर गंगा जु तेरो हि निर्मल नीर
तेरोजु न्हाइये पाप कट्टु है पावन होत सरीर।
देस देस के यात्रा आवे देखन तेरो तीर
मानपुरी प्रभु तुम गुन-सागर, जाहॉ ताहॉ देखत भीर॥

प्रतीत होता है कि गंगा के पवित्र जल मे स्नान करने से शारीरिक और आत्मिक शीतलता का अनुभव कवि को हो चुका है।

'अपने राम' के प्रति इनमे भी नामदेव के समान ही 'तालाबेली' (तडप) है—

तुम बीन और न कोई मेरो
तुम बीन जीय को दरद न ज्याने।
भर भर अखीयॉ रोई॥

इसीलिए ये निशिदिन 'उनका' ध्यान करते हैं—

'निसिदिन लागो रे तेरो ध्यान गोपाला
सुन्दर रूप देख मन मोहे भव-भ्रम भागो रे
मुरलि की धुन सुन भई रे बावरि
सब सुख त्यागो रे।
मानपुरी हरखि छब निरखत
आनन्द ज्यागो रे।

अपने 'घट' मे ही 'राम' का निवास है, परन्तु इस भेद को गुरु ही बता सकता है—

'मृगनाम सुगंध भरे भटके बनमुं (मे) सुगंध चित्र उदासी
घट मे नट आप विराजतु है सुद (सुध) न लेत मुरख बुद्ध वीनासी
देही के देव को भेद न जाणत कैसी कटेगी तेरी जमफासी
कहे मानपुरी गुरु गुमान बिना नित मीन मरे परे जल माहि पियासी॥

अद्वैत भाव व्यक्त कर कहते हैं—

प्रभुजी तुम तरुवर हम पंछी
सहज्यामृत फल बंछी।
तुम च्यंदा हम चेकोर भयेजी
तुम सरवर हम मच्छी।

मानपुरी को किसी देवता से विरक्ति नहीं है। वे सभी में अपने निर्गुण 'राम' को देखते है—

भज मन शंकर भोलानाथ
येकहि लोटा भर ज्यल चाहत चावल वेल की पात
बैल बघंबर सॉप फिरे घर कावडी खोपर हात।
मानपुरी प्रभु नीर्गुण गावे वासदपणे की बात॥